सुरश्री केसरबाई केरकर

अशोक दामोदर रानडे

(मूल प्रसिद्धी - छायानट, अंक ५६, संपा. केशवचंद्र वर्मा, जनवरी-मार्च १९९१)

सुरश्री केसरबाई केरकर का जन्म केरी गांव (गोआ) में १३-०८-१८९२ को हुआ। उन्होंने आरंभिक शिक्षा पंडित रामकृष्ण बुवा वझे और उस्ताद बरकतुल्ला खां बीनकार से प्राप्त की। तत्पश्चात सन १९२० से, १५ साल तक जयपुर घराने के उस्ताद अल्लादिया खां से अग्रिम शिक्षा प्राप्त की। उनका निधन १६-०९-१९७७ को हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने केसरबाई को सन १९३८ में 'सुरश्री' खिताब प्रदान किया। इसके अतिरिक्त और भी कई सम्मान केसरबाई को प्राप्त थे।

इस सदी के संगीतकारों की दो पीढ़ियां जिनसे प्रभावित रहीं, उन संगीतकारों में श्रीमती केसरबाई केरकर अग्रिम स्थान पर हैं। सामान्य श्रोताओं के लिए केसरबाई संगीत में शक्ति और भव्यता का समीकरण थीं, तो वही जानकारों के लिए केसरबाई का गायन श्रेष्ठता और गुणवत्ता का प्रमाण था, गायक-कलाकारों के लिए उनके गायन में आह्वानात्मक और पशोपेश में डालने वाले तत्त्व थे, तो अभ्यासकों के लिए उनका गाना एक आदर्श नमूना था ।

इतने विविध मोर्चों पर केसरबाई ने विजय किस प्रकार प्राप्त की ? यह सोचने का विषय है। उनके गाने की सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता थी, उनकी आवाज़ की पुरुषीय चौड़ाई। सुननेवालों को लगता था कि केसरबाई बहुत नीची पट्टी में अपना गाना प्रस्तुत करती थीं। किन्तु निरीक्षण करने पर उनकी पट्टी काली चार के आसपास की होती थी। इसका मतलब यह, कि उनकी पट्टी अन्य स्त्री-कलाकारों से अधिक ढाली नहीं थी। ढालेपन का जो अनुभव श्रोता महसूस करते थे, उसे स्पष्ट करने के लिए अन्य कारण ढूँढ़ने होंगे। ध्यान से सुनने पर पता चलता था कि चौड़ाई और ढालापन, इन दोनों की प्रतीति होने का कारण, उनकी आवाज के लगाव में था। वे हमेशा अविकृत 'आ'कार के साथ गाती थीं।

संगीत की लय कोई भी हो, सप्तक का कोई भी हिस्सा प्रयोग में लिया गया हो या कोई भी राग गाया जाए, केसरबाई हमेशा एक निर्दोष 'आ'कार से गाती थीं। 'आ' स्वर-वर्ण के ध्वनि-शास्त्रीय गुण सर्वविदित हैं। 'आ'कार की पहुँच ज्यादा होती है, इससे गाने में अखण्डता रहती है, लय के अनुसार उसे आसानी से बदला जा सकता है और तान के प्रयोग उसमें सहज संभव होते हैं। माइक्रोफोन के युग से पहले आवाज की पहुँच कितने महत्त्व की थी, यह बताने की जरूरत नहीं है। हाँ, अखण्डता और संगीत की द्रुत लय, इन दो वैशिष्ट्यों के बारे में केसरबाई की कला अवश्य अभ्यासनीय है।

हम पहले चौड़ाई और ढालेपन पर विचार करेंगे। केसरबाई चाहती थीं, आवाज का प्रक्षेपण। इसके लिए अविकृत 'आ'कार लाभकारी था। एक ध्वनि-शास्त्रीय सिद्धान्त है कि चौड़ाई पर अधिक ध्यान देने से तारता की अनुभूति कम होती है। केसरबाई ने माइक्रोफोन को स्वीकार नहीं किया। जब वे कार्यक्रम करने जाती थीं, तो संयोजकों से 'दमदार विनती' करके वे हमेशा माइक्रोफोन हटवा देने में सफल रहती थीं। निष्कर्ष यह, कि उनकी आवाज में शक्ति और चौड़ाई का जो प्रयोग होता था, उससे यदि माइक्रोफोन का नित्य का जो उपयोग होता है, वह रहता, तो निश्चय ही सुननेवालों को आवाज में विकृति सुनाई देती। (ऐसी परिस्थिति में आवाज फटी सुनाई देती है।) यह बात केसरबाई बखूबी जानती थीं।

जयपुर घराने की गायकी में अप्रचलित रागों और जटिल तानों का बहुत महत्त्व है। इस घराने के कलाकार अप्रचलित रागों पर इतना जोर देते हैं कि यह इनके गायन में एक विशिष्टीकरण की प्रतीति कराने लगा है। अछोप राग-रागिनियाँ और जयपुर घराना - यह एक समीकरण बन चुका है। वैसे केसरबाई के ध्वनिमुद्रित संगीत में जयपुर राग-संचय का पूरा प्रतिबिंब नहीं दिखाई देता। ध्वनिमुद्रित

संगीत में नंद, नटकामोद, मारूबिहाग जैसे अप्रचलित राग हैं जरूर, परन्तु केसरबाई की महफ़िली गायकी में बढ़हंस सारंग, सुहा कानड़ा, त्रिवेणी, खोकर, सावनी कल्याण, बसंती केदार, हिंडोल बहार, खट, संपूर्ण मालकंस, जयन्त मल्हार, मीराबाई की मल्हार, पूरबा आदि राग सुनाई देते थे। उदाहरणस्वरूप दी गई इस सूची से भी यह पता चलता है कि उनके अप्रचलित रागों में कितनी विविधता और गहराई थी।

किन्तु उनके गायन का विश्लेषण करने के लिए ध्वनिमुद्रित संगीत में अप्रचलित रागों की संख्या का कम होना कोई कठिनाई नहीं पैदा करता। कारण यह है कि प्रचलित समझे जानेवाले रागों में भी केसरबाई के गायन में अप्रचलितता का इशारा हमेशा मिलता था। केसरबाई इन रागों की इस तरह से कल्पना करतीं और उन्हें प्रस्तुत करती थीं कि प्रचलित रागों का चिरपरिचित चेहरा भी अधिक पेंचदार नजर आता था। संगीत-वाद्यों को ज्यादा जटिल रखना या राग के अशक्त स्वरों को अधिक महत्त्व देना इत्यादि युक्तियों द्वारा वे ऐसा करती थीं। उदाहरणार्थ राग जयजयवन्ती में सा रे सा ग रे जैसे वाक्य में वे जिस तरह से कोमल गांधार लगाती थीं, वह सामान्य प्रघात के अनुसार नहीं था। या, राग देसी में उनके द्वारा किया हुआ दो धैवत का लगाव भी पूर्व-सूचकियता लिए हुए नहीं होता था। साहस और लचीलेपन का ऐसा सम्मिलित उपयोग जयपुर घराने के सभी लोग नहीं करते थे। मुझे अभी तक केसरबाई का गाया राग यूं ही याद है। उस वक्त उन्होंने दो मध्यम का ऐसा उपयोग किया था कि सुनने वालों में राग के पहचान की एक उलझन पैदा हो गई थी। अब प्रचलित समझा जाने वाला दुर्गा जैसा राग भी उनकी पेशकारी में एक पहेली बन सकता था। पाँच स्वरों का यह राग जब केसरबाई प्रस्तुत करती थीं तो उस राग और संभावित सांगीतिक शक्यताएं उजागर हो जाती थीं ।

केसरबाई की तानों में भी जटिलता का प्रमाद मिलता है। तानों के बारे में उनके द्वारा अपनाई गई प्रणालियों का वर्णन किया जा सकता है। मिसाल के तौर पर, वे संगीत-स्वरों के अलग-अलग संख्या समूह बनाती थीं। सम और विषम स्वर-संख्या कभी-कभी एकान्तर माह से उनकी तानों में आते थे। एक और कदाचित ही सनाई देने वाली तान का प्रकार था : पहले और अन्तिम को छोड़कर, बीच वाले किसी स्वर को अविच्छिन्न रूप से जारी रखकर तान का प्रयोग करना। जयपुर घराने में प्रयुक्त होने वाला और एक खास प्रकार है, दुहरी बुनाईयुक्त तान। इस प्रकार की तान में गम गम गपमप मनी पनी पसा निसा, यूं स्वरों को लिया जाता है। एक बात ध्यान में रखनी चाहिए - और वह यह कि तान की जटिलता राग के मूल चलन पर निर्भर करती है। केसरबाई के गाए हुए राग मूलतः जटिल होने के कारण, आलाप भी सम्मिश्र होते थे। द्रुत गति में तान लेने से आलाप की अवस्था का रूपान्तर साध्य होता है और इसलिए आलाप और तानें दोनों का पेचीदा होना उनके गायन में विशेष रूप से तर्कसंगत था। फिर भी केसरबाई की तानों की जटिलता का यह एक ही स्पष्टीकरण होगा। उदाहरणार्थ, उनके गायन में स्वर-चित्र का भी उपयोग होता था। और भी एक तरीका था, स्वर-सप्तक के क्रमानुसार आने वाले दो अर्ध में एक ही स्वराकृति को प्रयुक्त करना। इसी प्रकार तीन सप्तकार्ध में कोई स्वराकृति प्रयुक्त करने से वह आकृति बड़ी नजर आती थी। इसके अलावा ऐसा भी महसूस होता था, जैसे ज्यादा स्वराकाश को व्याप्त किया गया है। अप्रचलित रागों के अंगभूत चलन में यह स्वराकृति ध्यान में रखते हुए आवश्यक नज़र आती है। अप्रचलित रागों में सरल स्वरक्रम लाना मुश्किल है, क्योंकि सरलता से अप्रचलित रागों की वक्रता बिगड़ जाती है। उनके स्वत्व को धक्का पहुंचता है। तानों के विषय में और भी एक बात पर ध्यान देना चाहिए। केसरबाई की तान द्रुत नहीं थी, पर उनकी तानों से गति का आभास अवश्य होता था। वक्र तान चलन से ज्यादा सप्तकार्ध व्यमन करने पर गति का यह अनुभव साध्य होता था। शायद उनकी चौड़ी आवाज़ से भी गति का आभास मिलता होगा। बोधदार स्वरपिण्ड को अविरल गति प्रदान करने से, गतिमानता का आभास किया जा सकता है।

तान के बारे में और भी एक सूक्ष्म विशेषता पर ध्यान देना चाहिए। अपनी तानों में केसरबाई हमेशा आवृत्ति में परिवर्तन लाती थीं। एक आकृतिबंध को अंत तक ले जाने से श्रोताओं को उसकी आदत हो जाती है और ये आश्चर्य प्रभावहीन हो जाता है। संमिश्र आकृतिबंध को पूरे तालावर्तन में लेते रहने के दो धोखे हैं। एक तो इससे आश्चर्य प्रदान करने वाले तत्त्व का अंत हो जाता है। दूसरे,

आकृतिबन्ध को यांत्रिक नियमितता से लेते रहने से तान के आकृतिबंध के ऐवज़ में पलटे सामने आते हैं। संगीत-शास्त्रीय संज्ञा में अलंकार और पलटा, इन दोनों में उचित तर्क किया गया है। इस पार्श्वभूमि पर बदलते हुए आकृतिबंध से तान सजाने की केसरबाई की तकनीक महत्त्वपूर्ण है। बहुत बार संगीतकार की अपरिपक्वता को आकृतिबंध से चिपके रहने की उसकी प्रवृत्ति से पहचाना जाता है। सही क्षण में, एक आकृतिबंध को छोड़कर दूसरे की संगत से प्रयोग में लाना सांगीतिक प्रगल्भता का लक्षण है।

संगीतशास्त्रीय, व्याकरणिक तथ्यता के बंधन को अस्वीकार करने की सौन्दर्य-दृष्टि केसरबाई में थी। इसका मनोहारी दर्शन उनकी तान में मिलता है। आलाप में रागों की शब्द-योजना आद्योपान्त निभाने के बाद केसरबाई सरल तानों का उपयोग बार-बार करती थीं। क्योंकि इससे संगीत का उत्कर्ष बिन्दु साधा जाता था। जैसा कि ज्ञात ही है, ग्वालियर घराने के संगीतकारों ने इस शस्त्र को अच्छी तरह से अपनाया है। जिस ढंग से क्रिकेट में स्ट्रेट ड्राइव देखकर आँखों को समाधान मिलता है, सरल तानों का परिणाम भी वैसा ही होता है। अप्रचलित रागों के वक्र चलन को आवर्तन के अन्तिम क्षणों में हटाकर फिर प्रस्तुत करना एक साहस है। इस क़िस्म की सोच को प्रयोग के तत्त्वज्ञान में अच्छी समझ का होना माना जाता है। अगर राग की प्रकृति, उसका व्यक्तित्त्व अतिसावधान और ब्यौरेवार आलाप से संवारा जाए तो आखिरी मौके पर व्याकरण को हटा देने से कोई नुकसान नहीं होता। ग्वालियर घराने के पंडित बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर के शागिर्द, पंडित अनंत मनोहर जोशी (लेखक के गुरु के पिता एवं गुरु) आलाप और तानों का राग के साथ संबंध स्पष्ट करते हुए कहते थे, 'आलाप से राग का अलगपन सामने आता है और तान से रागों की एकात्मता उभरती है'। शायद केसरबाई का भी यही मत था। वैसे देखा जाए तो हर राग में व्याकरण की व्यक्तिनिरपेक्ष परम्परा और व्यक्तिसापेक्ष सर्जनशीलता इन दोनों का संतुलन नज़र आना चाहिए। केसरबाई ने अधिकांशतः यह संतुलन बनाए रखा था।

संगीत में सही और गलत कुछ नहीं होता। संगीत में सुसंगत और असुसंगत होता है। राग की चौखट के बाहर जाना केसरबाई को सुसंगत लगता था, क्योंकि राग की चौखट को यदि अच्छी तरह से सिद्ध करना है तो उसे बीच-बीच में हिलाना चाहिए। लचीलेपन के बिना राग एक जिरह-बख्तर बन जाएगा। असल में राग, सूचक सांगीतिक मार्गदर्शन का एक ढाँचा है। कोई भी कलाकार किसी विशिष्ट समय पर क्या प्रस्तुत करता है, उतना ही महत्त्व (या उससे ज्यादा महत्त्व) इस बात का है, की वह क्या संकेत दे रहा है। तालीम, स्वभाव और कलाकार के धोखा उठाने के सामर्थ्य की मदद से राग की चौखट को कलाकार ढीला कर सकता है, या लचीला कर सकता है। केसरबाई के गाने में जो स्वेच्छाचारिता थी, और सरल तानों को वे जिस प्रकार इस्तेमाल करती थीं, यह उनके लिए राग की चौखट को ढीला करने के माध्यम थे। जयपुर घराने के अन्य कलाकारों को सुनने के बाद केसरबाई की यह ख़ासियत ज्यादा ही मनभावन लगती है।

केसरबाई केरकर के संगीत में सर्वसंग्राहकता थी। सन १९६८-६९ के दौरान उनसे की गयी एक चर्चा में यह बात अधिक स्पष्ट होकर उभरी। उन पर लिखे एक लेख पर उस समय उन्होंने मेरी कड़ी परीक्षा ली थी। उक्त लेख में मैंने कहा था कि जयपुर घराने के अनुशासन के बाहर केसरबाई जा सकती हैं, क्योंकि ग्वालियर, किराना जैसे इतर घरानों के कई लक्षणों को उन्होंने आत्मसात किया है। आगे मैंने लिखा था कि केसरबाई का यमन और उनका नटकामोद अलग-अलग उभरता है - कारण है, उनकी क्रान्तिकारिता! यमन में वे ज्यादा आजाद लगती हैं तो नटकामोद में अधिक अनुशासित। उनके आलाप यमन, दरबारी जैसे रागों में जिस विस्तार से किये जाते हैं, उसमें जयपुर से हटकर सोचने का उनका अपना तरीका नजर आता है। अन्त में मैंने यह भी कहा था कि ठुमरी और भजन जैसे प्रकारों को भी उन्होंने त्याज्य नहीं माना है, और इसी लिए उनका गायन जयपुर के कट्टरपंथियों से अलग है। इन सारी बातों को केसरबाई ने पूर्णरूप से स्वीकृत नहीं किया, फिर भी उन्होंने इतना अवश्य माना कि आलाप के विस्तृतिपन का कारण उन्हें मिली हुई बरकतुल्लाह बीनकार की तालीम थी। संगीतकारों में एक विरोधाभास सदैव दृष्टिगोचर होता है। हर संगीतकार अपने घराने की चौखट के बाहर जाने का यत्न

जारी रखता है। फिर भी घराने की तरफ से अपना ईमान किंचित भी ढला नहीं है, ऐसा जाहिर भी करना चाहता है। शायद जब घराने परिवार दायरे में सीमित थे, यह उस समय की मनोवृत्ति हो!

प्रस्तुति के सारे विशेष गुण और संगीत का धन आशय होते हुए भी केसरबाई एक गुण-विशेष के बिना महान गायिका नहीं बन पातीं। और वह गुण था, यथातथ्यता का। आशय के बारे में अगर कलाकार में यथातथ्यता न हो व्यक्ति फली-फैली-सी लगती है। अपनी सांगीतिक कल्पनाओं के बारे में केसरबाई कभी भी आज़माइशी नहीं रहीं। उन्हें क्या गाना था, इसका सुनने वालों को कभी अंदाज़ा नहीं लगाना पड़ा। वे अपने विचारों को बड़ी स्पष्टता से सामने रखती थीं। शब्दों का उच्चार, स्वर-वर्ण का उत्पादन या स्वर-स्थान की तरफ जाने में अनावश्यक क्रमशता - यह सारे दूषण उनमें नहीं थे। उनके गाने में सम्मिश्रता थी, किन्तु दुर्बोधता नहीं थी। इस सन्दर्भ में उनका सम पर आना एक बड़ा अच्छा उदाहरण है। विशिष्ट ताल के आवर्तन में मुखड़ा लेने के पहले जितनी अवधि बाकी होती थी, उसमें आखिर तक वे गाने का आशय भरती थी। जब सुनने वालों को यह महसूस होता था कि अब यहाँ और सांगीतिक आशय की गुंजाइश नहीं है, तब भी केसरबाई कुछ और आशय के लिए जगह बना ही लेती थीं। She actually created musical space! वे कभी सम पर सिर्फ आई नहीं, उन्होंने सम पर शानदार पदार्पण किया! केसरबाई के संगीत का निष्कर्ष-रूप परिणाम था, प्रभुत्व (Authority)। वे जो कुछ करती थीं, वह कभी गलत नहीं हो सकता, ऐसा लगता था। उदयनाचार्य नाम से एक श्रेष्ठ व्याकरणाचार्य थे, उन्होंने एक जगह कहा है, 'जहाँ सूर्य उदय होता है, वह पूर्व है। जो उदयनाचार्य कहता है, वह व्याकरण है'। केसरबाई में वैसा ही आत्मविश्वास था और इस आत्मविश्वास को वे श्रोताओं तक पहुँचा सकती थीं। बड़ी हद तक इसका कारण था, उनकी गायकी का मज़बूत ढाँचा। जब उनका गाना अच्छा नहीं होता था, तब भी उतने ही ऊँचे स्तर का होता था। उनके संगीत में एक गारण्टी होती थी कि कम से कम इतना तो मिलेगा ही! साधकों के लिये वे आदर्श थीं, रसिकों के लिए एक भरोसेमन्द कलाकार थीं और संगीतकारों के लिए वे एक सराहनीय चमत्कार थीं।